एस. एस. संधवालिया सी. जे. और एस. एस. कांग **के समक्ष**

नरिंदर सिंह और एक अन्य,-याचिकाकर्ता।

बनाम '

हरियाणा राज्य और अन्य,-उत्तरदाता।

1980 का आपराधिक विविध सं. 1251।

24 सितंबर, 1980।

दंड प्रक्रिया संहिता *(1974* का एच)- **धारा** 145 *(1)*-शांति भंग करने की संभावना वाले विवाद का अस्तित्व-इसके संबंध में **धारा***145* के तहत प्रारंभिक आदेश दर्ज करने वाले कार्यकारी मजिस्ट्रेट-उनकी संतुष्टि के आधार को दर्ज करने में चूक-क्या यह पूरी कार्यवाही को **भंग** करता है।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की **धारा** 145 (1) के प्रावधानों का अनुपालन वांछनीय है, फिर भी ऐसा करने में विफलता अधिकार क्षेत्र का दोष नहीं है जो या तो लाइलाज है या जो पूरी कार्यवाही को **भंग** कर देगा।जब तक कि पीड़ित पक्ष द्वारा गंभीर पूर्वाग्रह नहीं दिखाया जा सकता है, कार्यवाही

नरेन्द्र सिंह एवम् अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य

एस.एस. संध्यावालिया, मुख्य न्यायधीश

संहिता की **धारा** 145 (1) के तहत प्रारंभिक आदेश के रूप में केवल दोष **कार्यवाही को** दूषित नहीं किया जाएगा।(पैरा 3 और 7)।

श्री राम और अन्य बनाम। राज्य और अन्य, ए. आई. आर. 1958 पंजाब 47.

नेति आदि। बनाम हरियाणा राज्य, *1976* वर्तमान विधि पत्रिका *(क्र.)97*. **खारिज किया**।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की खंड *482* के तहत याचिका, जिसमें प्रार्थना की गई है कि 26 दिसंबर, *1979* के विवादित आदेशों को रद्द किया जा सकता है।

यह भी प्रार्थना की जाती है कि याचिका विचाराधीन रहने के दौरान विद्वान कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित आगे की कार्यवाही को दरकिनार कर दिया जाए।*!*

क्र. विविध।*1980* का सं. *1251*।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की **धारा** *482* के तहत याचिका में अनुरोध किया गया है कि याचिका विचाराधीन रहने के दौरान, उपरोक्त आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल करने **से छुट दी जाये।**

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता सी. बी. कौशिक।

भूप सिंह, अतिरिक्त ए. जी. हरियाणा, राज्य के लिए।

प्रतिवादी संख्या 3 के लिए अधिवक्ता सी. बी. गोयल।

एस. एस. संधवालिया, सी. जे.

1. क्या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद 'संहिता' के रूप में संदर्भित) की **धारा** 145 (1) के तहत प्रारंभिक आदेश में विवाद के अस्तित्व के संबंध में एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा संतुष्टि और उसके संतुष्ट होने के आधारों को दर्ज करने में केवल चूक से शांति भंग होने की संभावना है, यह महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसे इस संदर्भ में फिर से शुरू किया गया है।

2. **एक ऐसे प्रश्न में जो एकदम कानूनी है**, तथ्य **तुल्नात्मक रूप से** महत्वहीन हो जाते हैं। यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि उनके समक्ष रखी गई सामग्री पर, कैथल के कार्यकारी मजिस्ट्रेट ने संहिता की **धारा** 145 (1) के तहत निम्नलिखित प्रारंभिक आदेश दर्ज किया:—

> "फाइल आज मेरे सामने पेश की गई। पुलिस रिपोर्ट की जांच की गई। 16 **जनवरी 1980 को कानून के अनुसार पक्षों को नोटिस जारी किया जाये।** पक्षकारों को उस तारीख को अदालत में उपस्थित होना चाहिए और लिखित बयान के साथ-साथ अन्य दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने चाहिए।"

उपरोक्त आदेश को याचिकाकर्ताओं द्वारा मुख्य रूप से चुनौती दी गई है क्योंकि कार्यकारी मजिस्ट्रेट की संतुष्टि और उसके लिए स्पष्ट आधारों को उपरोक्त आदेश में शामिल नहीं किया गया है।यह मामला, पहली बार में, के. एस. तिवाना, जे. के **समक्ष** निर्णय आया, जिन्होंने अपने संदर्भ आदेश में देखे गए उदाहरणों के टकराव को देखते हुए मामले को आधिकारिक निर्णय के लिए भेजा है।

3. हमारे सामने निर्विवाद होने के मुद्दे पर ढेर सारी मिसाले मौजुद हैं। अनिवार्य रूप से न्यायिक मामलों में बड़े पैमाने पर, अलग-अलग और असंगत नोट दिखाई देते हैं। हालाँकि, हमें ऐसा लगता है कि कम से कम इस न्यायालय के भीतर, मामला बाध्यकारी पूर्ववर्ती द्वारा इतनी अच्छी तरह से कवर किया गया है कि यह व्यर्थ होगा और वास्तव में सैद्धांतिक रूप से परीक्षा शुरू करना व्यर्थ होगा। अजायब सिंह और एक अन्य बनाम अमर सिंह और अन्य में निर्णय के लिए एक समान मुद्दा उत्पन्न हुआ था, (1)। उक्त मामले में संहिता की धारा 145 (1) के तहत मजिस्ट्रेट का विवादित आदेश निम्नलिखित पक्षों में थाः—

> "कैलेंडर आज पेश किया गया है। इसे पंजीकृत किया जाना चाहिए। पक्षकारों को अपने दस्तावेजी साक्ष्य और शपथ पत्र दाखिल करने और उन व्यक्तियों को पेश करने के लिए 4 जुलाई, 1961 के लिए नोटिस जारी करना चाहिए जिनके बयानों पर वे भरोसा करते हैं।"

इसमें भी मामला खन्ना, न्यायधीश, एकल पीठ के सामने आया था, उन्होंने अधिकार के प्रतिरोध को देखते हुए, इसे एक बड़ी पीठ द्वारा निर्णय के लिए भेजा गया था। खण्ड पीठ ने तब मामले या सिद्धांत दोनों की जांच की और इस बिंदु पर पूर्ववर्ती के एक विस्तृत सर्वेक्षण भी किया। मजिस्ट्रेट के विवादित आदेश को बरकरार रखते हुए, जे. एच. आर. खन्ना, जे. (जिनके साथ जे. गुरदेव सिंह, संबंधित हैं) ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकालाः—

> "इसलिए, मेरा मानना है कि संहिता की खंड 145 की उप-खंड (1) के अनुसार आदेश पारित करने के लिए मजिस्ट्रेट की चूक एक अनियमितता है जिसे संहिता की खंड 537 के तहत ठीक किया जा सकता है जब तक इसे नहीं दिखाया जा सकता है।

(IX I. L. R. 1964 (1) Pb. और हाइ 1।

कि **इससे किसी भी पक्ष पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा है।** जिसका वर्तमान मामले में कोई सबूत नहीं है।

मैं उपरोक्त दृष्टिकोण से सम्मानजनक रूप से सहमत हूं और यह कहना पर्याप्त होगा कि एच. आर. खन्ना, जे. द्वारा दर्ज किए गए खण्ड पीठ के स्पष्ट निर्णय में कानून की स्पष्ट व्याख्या को शायद ही कोई उपयोगी तरीके से जोड़ सकता है। इस संबंध में मैं विद्वान संदर्भित न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए अस्पष्ट संदेह से सहमत नहीं हूं कि जयदेव सिंह, जे., की **अजायब** सिंह और दूसरे के मामले *(*उपरोक्त*)* में सहमति वाली टिप्पणियां किसी भी तरह से मुख्य निर्णय में व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से अलग हैं।गुरूदेव सिंह, जे. ने अपनी सहमति को स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया था और उनकी टिप्पणियों को इस बात पर जोर देने के लिए किया गया है कि हालांकि संहिता की **धारा** 145 (1) के प्रावधानों का अनुपालन वांछनीय है, फिर भी ऐसा करने में विफलता अधिकार क्षेत्र का दोष नहीं है जो या तो लाइलाज है या जो पूरी कार्यवाही को **भंग** करेगा। मैं स्पष्ट रूप से एक सहमति वाले फैसले में असहमति के किसी भी संकेत को पढ़ने में असमर्थ हूं।

4. तब इस बात पर प्रकाश डाला जा सकता है कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **अजायब** सिंह और दूसरे के मामले (ऊपर) में फैसले की कोई सार्थक आलोचना नहीं की और वास्तव में नहीं कर सके।वहाँ के दृष्टिकोण की शुद्धता पर गंभीरता से हमला नहीं किया गया था।हालाँकि, मामला अब उस पर नहीं टिका है क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि इस दृष्टिकोण के अनुमोदन की मुहर अब अंतिम न्यायालय द्वारा ही निर्धारित की गई है।आर. एच. भूटानी अन्य सुश्री मणि जे. देसाई और अन्य (2) **में** संहिता की **धारा** 145 (1) के तहत मजिस्ट्रेट के प्रारंभिक आदेश को इसी तरह की चुनौती दी गई थी।मजिस्ट्रेट ने आदेश में अपनी संतुष्टि या कारणों को दर्ज नहीं किया था।उच्च न्यायालय ने इस आदेश को रद्द कर दिया।अपील पर, उनके **माननीय न्यायमूर्ति** ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ उच्च न्यायालय को उलट दियाः—

"उप-धारा (1) के तहत संतुष्टि मजिस्ट्रेट की होती है।यह प्रश्न कि क्या उसके समक्ष सामग्री पर, उसे कार्यवाही शुरू करनी चाहिए या नहीं, इसलिए, उसके विवेकाधिकार में है, जिसका उपयोग, निस्संदेह, उस संबंध में कानून के अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त नियमों के अनुसार किया जाना चाहिए।इसलिए, उसकी संतुष्टि के लिए सामग्री की पर्याप्तता के बारे में कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है।उप-धारा की भाषा **साफ** और स्पष्ट है।

कि वह पुलिस रिपोर्ट या "अन्य जानकारी" दोनों से अपनी संतुष्टि पर पहुँच सकता है जिसमें बेदखल किए गए पक्ष द्वारा एक आवेदन शामिल होना चाहिए। उच्च न्यायालय, अपने पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, उस सामग्री के प्रश्न पर ध्यान नहीं देगा जिसने मजिस्ट्रेट को संतुष्ट किया है।

सवाल यह है कि क्या मजिस्ट्रेट द्वारा पारित प्रारंभिक आदेश खंड 145 (1) का उल्लंघन था, यानी पूर्ववर्ती दो शर्तों में से किसी एक की अनुपस्थिति में । उच्च न्यायालय ने जिन आधारों पर हस्तक्षेप किया, उनमें से एक यह था कि मजिस्ट्रेट अपने प्रारंभिक आदेश में अपनी संतुष्टि के कारणों को दर्ज करने में विफल रहे।इस खंड में, निस्संदेह, उसे कारण दर्ज करने की आवश्यकता होती है।मजिस्ट्रेट ने अपने समक्ष आवेदन में दिए गए तथ्यों के आधार पर और शपथ पर अपीलकर्ता से पूछताछ करने के बाद संतोष व्यक्त किया है।इसका मतलब है कि वे तथ्य प्रथमदृष्टया पर्याप्त थे और उनकी संतुष्टि के कारण थे।"

मुझे ऐसा लगता है कि उपरोक्त अवलोकन याचिकाकर्ता के खिलाफ मुद्दे को समाप्त करता है। यदि आधारों या संतुष्टि के कारणों को छोड़ना एक दुर्बलता नहीं है जो कार्यवाही को भंग कर देगा, तो मैं यह देखने में असमर्थ हूं कि 'संतुष्टि' शब्द के उपयोग के रूप या अनुपस्थिति में मामला कैसे एक उच्च आधार पर होगा। मजिस्ट्रेट की संतुष्टि के आधारों को बताने के संबंध में अधिनियम की आवश्यकता, मामले का सार है और यदि इसका पालन करने में विफलता ठीक करने योग्य है, तो स्पष्ट रूप से केवल संतुष्टि शब्द का उपयोग करने के रूप या कमी में विफलता समान रूप से होगी।

5. अब अनिवार्य रूप से पूर्ववर्ती की ओर बढ़ते हुए मैं अन्य उच्च न्यायालयों के असंख्य निर्णयों के संदर्भ देना छोड़ दूंगा और मुख्य रूप से इस न्यायालय के भीतर के दृष्टिकोण तक खुद को सीमित रखूंगा। फकीर चंद बनाम भाना राम और अन्य, (3) में, जिसे संदर्भ के आदेश में उद्धृत किया गया है, मामले का मूल यह था कि क्या मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की *धारा 145 (1)* के तहत आदेश पारित करने से पहले मौखिक साक्ष्य प्राप्त करने से इनकार करने में गलती कर रहा था। ऐसा अभिनिर्धारित किया गया था और मजिस्ट्रेट के आदेश को उस आधार पर इस निर्देश के साथ दरकिनार कर दिया गया था कि उसमें याचिकाकर्ता *मजिस्ट्रेट के समक्ष* ारा 145 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपने आवेदन के समर्थन में रिकार्ड पर सामग्री रखने में सक्षम हो सकता है। यद्यपि इस निर्णय में ऐसी टिप्पणियां है कि मजिस्ट्रेट को प्रारम्भिक आदेश में अपनी संतुष्टि के आधार निर्धारित करने चाहिए, लेकिन यह स्पष्ट रूप से नहीं माना गया है कि ऐसा करने में विफलता या तो कार्यवाही को भंग कर

देगी या क्षेत्राधिकार की कुल कमी का कलंक लगेगा।

इसलिए, मेरे विचार से यह निर्णय अलग है। इसी तरह गप्पू और अन्य बनाम सुरजन (4) में, इस आशय की टिप्पणियाँ होती हैं कि संहिता की धारा 145 (1) के तहत प्रारंभिक आदेश पारित करने से पहले मजिस्ट्रेट को एक स्पष्ट निष्कर्ष और उसका कारण देना चाहिए कि शांति भंग होने की संभावना थी। यहाँ जो बात ध्यान देने योग्य है वह यह भी है कि यह अभिनिर्धारित नहीं किया गया है कि ऐसा करने में विफलता आवश्यक रूप से कार्यवाही को दूषित करेगी।इसलिए, इस निर्णय को भी स्पष्ट रूप से अलग किया जा सकता है।

6. लेकिन कैसे, श्री राम और अन्य बनाम राज्य और अन्य(5) में टेकचंद जे. ने यह विचार रखा कि संतुष्टि दर्ज करने की आवश्यकताएं और उसके लिए आधार भी चरित्र में इतने अनिवार्य थे कि इसका पालन करने में चूक पूरी कार्यवाही को दूषित कर देगी। मुख्य रूप से अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णयों के साथ-साथ लाहौर उच्च न्यायालय के पहले के कुछ निर्णयों भी भरोसा रखा गया था, जबकि रतन बनाम टीका (6) में जे. दीन मोहम्मद के दृष्टिकोण और साथ ही इसमें उल्लिखित अधिकारों के साथ भी असहमति भी व्यक्त की गई थी। इनमें से कुछ अधिकारों पर भरोसा किया गया था जिसमें अजायब सिंह और दूसरे के मामले (ऊपर) में खण्डपीठ स्पष्ट रूप से ध्यान दिया। भले ही श्री राम और अन्य के मामले पर खण्ड पीठ द्वारा विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया गया था, लेकिन इसका अनुपात अब आर. एच. भूटानी के मामले (ऊपर) में न्यायमूर्ति के दृष्टिकोण के साथ सीधे संघर्ष में है. इसे देखते हुए इसे अब अच्छे कानून के रूप में नहीं माना जा सकता है और इसके द्वारा खारिज कर दिया जाता है। नेती आदि बनाम हरियाणा राज्य आदि (7), में विद्वान एकल न्यायाधीश ने भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया। ऐसा प्रतीत होता है कि वकील अत्यधिक लापरवाही बरत रहे थे और अजायब सिंह और दूसरे के मामले (ऊपर) के साथ-साथ आर. एच. भूटानी के मामले *(ऊपर 1)* के फैसले को विद्वान एकल न्यायाधीश के ध्यान में नहीं ला रहे थे।

(2) 1970 पी. एल. आर. एम. एफ.
(3) ए. आई. आर. 1958 पी. बी. 47.
(4) ए. आई. आर. 1939 लाह 233।
(5) 1976 कर्।लॉ जर्नल (सीआरएल)97.

उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, नेति का मामला (उपरोक्त) भी अब क्षेत्र में नहीं रह सकता है और इसलिए इसे खारिज कर दिया जाता है।

7. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, शुरुआत में पूछे गए प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है।जब तक पीड़ित पक्ष द्वारा गंभीर पूर्वाग्रह नहीं दिखाया जा सकता है, तब तक संहिता की कार्रवाई 145 (1) के तहत प्रारंभिक आदेश के रूप में केवल दोष से कार्यवाही दूषित नहीं होगी।

8. उपरोक्त सिद्धांत को लागू करते हुए, वर्तमान मामले में कार्यकारी मजिस्ट्रेट का विवादित

आदेश और उसके परिणामस्वरूप होने वाली कार्यवाही उपलब्ध नहीं हैं।यह उल्लेख किया जा सकता है कि याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा इसे स्थापित करने से दूर कोई पूर्वाग्रह दिखाने का प्रयास भी नहीं किया गया था।

9. पुनरीक्षण याचिका आधारहीन है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

एन के एस।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

अनुवादक : गीता